IJRAR.ORG E-ISSN: 2348-1269, P-ISSN: 2349-5138

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | IJRAR.ORG

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

उत्तर-औपनिवेशिक काल में आधुनिक भारत की पहचान का निर्माण

विवेक आशीष बाखला
सहायक प्राध्यापक
चतरा महाविद्यालय, चतरा
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

शोध सार :

भारत का ब्रिटिश उपनिवेशीकरण 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा शुरू हुआ। अगली सदी तक आते-आते यह उपनिवेशीकरण और भी तेज होता चला गया। इसके परिणामस्वरूप भारत पर ब्रिटिश क्राउन का सीधा शासन स्थापित हो गया। लगभग 200 वर्षों तक भारत की पहचान ब्रिटिश अधिकृत भारत के रूप में बनी रही। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में उभरे भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलनों ने ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता की मांग की। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, भारतीय नेताओं और बुद्धिजीवियों ने भारतीय संस्कृति की समृद्धि और विविधता को उजागर किया और इसे राष्ट्रीय एकता का आधार बनाने का प्रयास किया। फलत:, भारतीय कला, साहित्य, और दर्शन को बढ़ावा दिया गया, और भारतीय मूल्यों और आदर्शों को महत्व दिया गया। 1947 ई॰ में भारत को ब्रिटिश हुकूमत से आज़ादी मिली और औपनिवेशिक शासन का अंत हुआ तथा भारत की स्वतंत्र पहचान बनी। भारत में उत्तर-औपनिवेशिक पहचान का निर्माण एक जटिल और बहुआयामी प्रकिया है। भारत ने औपनिवेशिक शासन की छाया से बाहर निकलकर एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान स्थापित करने की दिशा में कई कदम उठाये हैं, साथ ही वैश्विक पटल पर अपनी राष्ट्रीय पहचान को फिर से परिभाषित करने और मजबूत करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में, विभिन सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्तर-औपनिवेशिक काल में भारत की पहचान के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक भारतीय संस्कृति और परंपराओं का पुनरुत्थान रहा था। इस पहचान का निर्माण केवल सांस्कृतिक पुनरुत्थान तक सीमित नहीं था बल्कि इसके और भी कई विभिन पहलू थे। वर्तमान समय में भारत ने अपनी विविधता और समावेशिता को बनाए रखते हुए एक विशिष्ट उपनिवेशोत्तर पहचान स्थापित की है, जो आधुनिकता और परंपरा का मिश्रण है। हालांकि, राजनीति, क्षेत्रीयता, और साम्प्रदायिकता के मुद्दों ने आधुनिक भारत की पहचान निर्माण प्रक्रियाओं को चुनौती दी है। फिर भी, यह पहचान निरंतर विकसित हो रही है, जिसमें कई कारक भूमिका निभा रहे हैं। इस शोध लेख में उत्तर-औपनिवेशिक काल में आधुनिक भारत निर्माण से जुड़ी विभिन प्रक्रियाओं एवं पहलुओं का अध्ययन किया जाएगा, साथ ही इससे संबंधित चुनौतियों को भी रेखांकित किया जाएगा।

कुंजी शब्द : औपनिवेशिक, उत्तर-औपनिवेशिक, बहुआयामी, स्वतंत्रता, संस्कृति, पुनरुत्थान

प्रस्तावना

1947 में देश ने अपने आर्थिक पिछड़ापन, भयंकर गरीबी, करीब-करीब निक्षरता, व्यापक तौर पर फैली महामारी, भीषण सामाजिक विषमता और अन्याय के उपनिवेशवादी विरासत से उबरने के लिए अपनी लंबी यात्रा की शुरुआत की। भारत की आजादी के बाद देश के लिए एक नई गाथा लिखने की प्रक्रिया शुरू हुई, जिसमें औपनिवेशिक काल के ज़ख्मों पर मरहम लगा कर उनसे उबरना भी था। भारतीय जनता और उसके नेताओं द्वारा एक उत्साह, दृढ़ संकल्प तथा सफल होने की आशा के साथ राष्ट्र निर्माण के कार्य को आत्मविश्वास के साथ शुरू किया गया। निर्मित किए जाने वाले आजाद भारत की बुनियादी पहचान- राष्ट्रवाद, धर्म-निरपेक्षता और लोकतंत्र संबंधी मूल्य और तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य एवं उग्र-सुधारवादी परिवर्तन के साथ बनी व्यापक सामाजिक सहमति के साथ शुरू हुई।

भारत की एकता और अखंडता को मजबूत बनाना और उसे सुरक्षित रखना प्राथमिक लक्ष्यों में से एक और सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। भारतीय एकता को मजबूत करने के लिए यह स्वीकार किया गया कि भारत में क्षेत्रीय, भाषायी, सांस्कृतिक, जातीय और धार्मिक विविधताएं मौजूद हैं। स्वतंत्र भारत को अपनी अग्राभिसारी आर्थिक चढ़ाई को बिल्कुल निचले धरातल से प्रारंभ करना था। भारत की कृषि और औद्योगिक तकनीक के उत्पादक स्तर को सतत एवं तेज गति से आगे ले जाना था। भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग होने के बावजूद इसे आत्मनिर्भर एवं विकसित देशों के हितों के साधन के रूप में तथा विदेशी पूंजी के वर्चस्व से मुक्त किया जाना था। इस उद्देश्य से 1955 के बाद भारत एक

समेकित राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध हुआ, जो प्राथमिक रूप से कृषि और घरेलू बाजार को आपूर्ति करने वाले देशी उद्योगों पर आधारित था। विविधताओं में एकता कही जाने वाली भारतीय सामाजिक परिदृश्य में भी सुधार की आवश्यकता थी। औपनिवेशिक काल में हुए कई जातीय आंदोलनों तथा गांधीजी के अछूत विरोधी आंदोलनों के बावजूद भी स्वतंत्र भारतीय समाज विशेषकर ग्रामीण समाज में जातिप्रथा और अछूत प्रथा का अस्तित्व बना हुआ था। दूसरी ओर समाज में पुरुषों का लगभग पूरा वर्चस्व था और महिलाओं को अत्यधिक सामाजिक शोषण का शिकार होना पड़ता था। 1951 भारतीयों के बीच निरक्षरता और अज्ञानता एक सामान्य बात थी। 1947 में शुरू हुए भारत की नई पहचान और प्रगति के आरंभिक प्रयासों में एक बहुत बड़ी भूमिका इसके नेताओं की व्यक्तिगत क्षमता और दूरदर्शिता थी। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान इन नेताओं ने समझौता करने और विभिन्न प्रकार के हितों के बीच संतुलन बनाने और सर्वसम्मति से काम करने का सफल प्रयास किया था।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्यों को इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:

- पूर्व-औपनिवेशिक भारत की स्थिति को रेखांकित करना।
- ब्रिटिश सरकार की नीतियों में विरोधाभास तत्वों की जाँच करना।
- भारत पर औपनिवेशिक शासन के प्रभावों उजागर करना।
- स्वतंत्र भारत के समक्ष विविध चुनौतियाँ और विकास के लिए किए गए प्रयासों की समीक्षा करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र एक निर्धारित विषय के अंतर्गत योजनाबद्ध रूप से सम्पन्न किया गया है। इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत अध्ययन तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। तथ्यों का प्रस्तुतीकरण द्वितीयक स्रोत के माध्यम से किया गया है तथा सामाजिक अनुसंधान के नियमों का पालन कर आलोचनात्मक ढंग से जाँच पड़ताल की गई है। शोध पत्र का उद्देश्य प्रस्तुत विषय पर अंतिम सत्य या निष्कर्ष तक पहुंचना नहीं है अपितु शोध में कुछ नए तथ्यों को नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करना है।

परिकल्पना

- भारत में अंग्रेजों के हित मुख्यत: आर्थिक थे, जो भारत के पिछड़ेपन का मुख्य कारण बनी।
- भारत में औपनिवेशिक शासनकाल में विरोधात्मक नीतियां नजर आती हैं।
- औपनिवेशिक शासन की कई व्यवस्थाएँ भारतीयों के लिए नकारात्मक और सकारात्मक दोनों रहीं।
- स्वतंत्र भारत की नींव औपनिवेशिक ढांचे में ही रखी गई।
- किसी भी देश की पहचान का निर्माण अनिश्चित और अस्थायी होता है।

विवरण

औपनिवेशिक काल की पृष्ठभूमि

प्राचीन काल से ही भारत का विश्व के विभिन्न देशों से व्यापारिक संबंध रहा हैं। प्रारंभ में व्यापारिक गतिविधियां अधिकांशतः भू-मार्गों से होता था, और व्यापारिक उत्पाद सीमित होते थे। अरब, चीन, यूनान, पर्शिया, यूरोप आदि देशों से यात्री जिज्ञासा वश भी भारत आते रहे थे। 1498 ई॰ में भारत पहुँचने के समुद्री मार्ग का पता लगने के साथ ही यूरोप के विभिन्न देशों का आगमन बड़े पैमाने पर भारत में होने लगा। 15 वीं शताब्दी से पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी जैसे यूरोपीय देशों के व्यापारी भारत से व्यापार करने के लिए भारत आए। भारत में अंग्रेजों के आगमन से पहले पुर्तगाली भारत से व्यापार और राज्य सत्ता के लिए प्रयत्न करने वाले एकमात्र यूरोपीय शक्ति थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों में भारत में सर्वाधिक प्रभावी अंग्रेज रहे थे। अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा अंग्रेजों की सफलता का प्रमुख कारण इनका भारत सहित सम्पूर्ण एशियाई व्यापार के स्वरूप को समझना तथा व्यापार विस्तार में राजनीतिक सैनिक शक्ति का आश्रय लेना था।

17 वीं शताब्दी में भारत विश्व में औद्योगिक वस्तुओं का सबसे बड़ा उत्पादक देश कहलाता था। भारत से सूती व रेशमी वस्त्र, मसाले, नील, शक्कर, औषधियां, रत्न एवं विभिन्न दस्तकारी की वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं। यूरोपीय लोग भारत से बहुमूल्य धातु देकर ये उत्पाद अपने देश के बाजारों में ले जाते थे फलत: भारत में सोना, चाँदी अधिकाधिक जमा होते गए। निसंदेह भारत इस काल में एक समृद्ध देश था और 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। परन्तु 18 वीं शताब्दी में भारत में अनेक ऐसे कारण सक्रिय हुए जिनसे व्यापार-वाणिज्य में पतन का दौर प्रारम्भ हो गया। उत्तरवर्ती मुगल शासकों ने तत्कालीन यूरोपीय व्यापारियों को जो सुविधाएँ प्रदान की थीं उनसे स्वदेशी व्यापारियों को गम्भीर क्षति पहुँची, जिससे भारत के गृह-उद्योग बड़े पैमाने पर प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था अधिशेष और आत्मनिर्भरता की अर्थव्यवस्था से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिणत हो गई।

अंग्रेजों की बढ़ती व्यापारिक मुनाफे की लालसा ने उन्हें भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने के लिये प्रेरित किया। 1757 ई॰ में प्लासी के युद्ध और फिर 1764 ई॰ में बक्सर के युद्ध में अंग्रेज़ों की जीत के साथ ही भारत के लिए लगभग 200 वर्षों की औपनिवेशिक दासता का युग आरम्भ हो गया। अंग्रेज जो व्यापारी बन कर भारत आए थे वे अब भारत के भाग्य निर्माता बन गए, जिन्होंने भारत के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जैसे सभी पहलुओं को प्रभावित किया। यहीं से भारत की पहचान 'औपनिवेशिक भारत' अथवा 'ब्रिटिश अधिकृत भारत' के रूप में

होने लगी। भारत पर शासन करने वाले पूर्व विजेताओं एवं अंग्रेजों के मध्य विशेष अंतर यह रहा था, कि पहले के विजेता भारतीय जीवन का अंग बन गए थे, परन्तु अंग्रेज भारत का अभिन्न अंग कभी नहीं बन सके।

संक्रमण काल और पश्चिमीकरण

औपनिवेशिक काल से पहले, भारत की पहचान कई पहलुओं में समृद्ध और विविध थी। भारत एक प्राचीन सभ्यता की भूमि थी, जिसमें सिंधु घाटी सभ्यता जैसी उन्नत संस्कृतियां शामिल थीं। यहाँ विभिन्न धर्मों, भाषाओं, कला और साहित्य का विकास हुआ। भारत ने गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा और दर्शन जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। औपनिवेशिक काल से पहले, भारत की अर्थव्यवस्था समृद्ध थी, जो अपने वस्त्रों, मसालों और अन्य वस्तुओं के लिए विश्व में प्रसिद्ध था और स्वयं आत्मनिर्भर भी रहा था। अलग-अलग समय में भारत में विभिन्न साम्राज्य और राजवंशों ने शासन किया। इन साम्राज्यों में मौर्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्य, विजयनगर साम्राज्य और मुगल साम्राज्य आदि शामिल थे। भारत की विविध सामाजिक संरचना इसकी अन्य बड़ी पहचान थी। भारतीय समाज विभिन्न जातियों और समुदायों में विभाजित था। यहाँ विभिन्न सामाजिक और धार्मिक परंपराएं प्रचलित थीं। एक सबसे बड़ी पहचान भारत की कृषि प्रधान देश के रूप में थी। औपनिवेशिक शासन से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था का आधार मूलत: कृषि ही था जो आज भी कायम है। उस समय भारत की 80% जनसंख्या गाँवों में बसती थी, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि के माध्यम से अपनी रोजी-रोटी कमा रही थी।

यूँ तो अंग्रेजी शासन से पहले भी विभिन्न विदेशी शासकों के दौर में भारत कई बार संक्रमण काल से गुजर चुका था परन्तु, अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था में बुनियादी और स्थायी परिवर्तन हुए। यह काल भारतीय इतिहास के पिछले सभी कालों से भिन्न था, क्योंकि अंग्रेज अपने साथ नई औद्योगिकी, संस्थाएँ, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आए थे।नई औद्योगिकी और उसके कारण संचार-साधनों में होने वाली क्रांति की सहायता से अंग्रेजों ने देश का ऐसा एकीकरण किया जैसा पहले उसके इतिहास में कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजी राज की स्थापना से स्थानीय लड़ाइयाँ सदा के लिए ख़त्म हो गईं जो अंग्रेजों से पहले भारत में निरन्तर चलती रहती थीं और जो व्यक्तियों तथा समूहों के लिए सामाजिक गतिशीलता का महत्त्वपूर्ण साधन थीं।

19वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भूमि का सर्वेक्षण करके राजस्व निर्धारित किया, आधुनिक प्रशासन तन्त्र, सेना और पुलिस की स्थापना की, अदालतें स्थापित करके कानून की संहिताएं बनायी, संचार-साधनों के अंतर्गत रेलों, डाक और तार, सड़कों और नहरों का विकास किया, स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की और इन सबके द्वारा एक आधुनिक राज्य की नींव डाली, जिसकी पहचान ब्रिटिश अधिकृत भारत के रूप में हुई। अंग्रेजों ने छापेख़ाने का भारत में बड़े पैमाने पर प्रयोग किया और इसने भारतीय जीवन और चिंतन में गंभीर और बहुविध परिवर्तन किए। स्कूलों के साथ-साथ पुस्तकों और पत्रिकाओं नें आधुनिक और पारंपरिक ज्ञान को बहुसंख्यक भारतीयों तक पहुँचा दिया और शिक्षा अब एक पुश्तैनी समूहों का विशेषाधिकार नहीं रहा। विद्यालय भारत में अंग्रेजों के आने के बहुत पहले से मौजूद थे, पर वे अंग्रेजों द्वारा स्थापित स्कूलों से भिन्न थे। पारंपरिक भारतीय विद्यालय उच्च जातियों के बच्चों तक ही सीमित थे और इनमें अधिकतर धार्मिक और पारंपरिक ज्ञान की ही शिक्षा दी जाती थी।

यूरोप के ईसाई धर्म-प्रचारक अंग्रेजों के आने के बहुत पहले से भारत को जानते थे। सम्राट अकबर के शासन काल में कई ईसाई मिशनरियों का भारत में प्रवेश होता रहा था। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक दिनों में भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी। 1813 के चार्टर अधिनियम के तहत ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों को भारत में प्रवेश करने तथा धर्म प्रचार की अनुमति प्राप्त हुई। यूँ तो ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों का मूल उद्देश्य अंग्रेजी शासन के हित में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करना था परंतु उनके द्वारा कई मानवतावादी मूलक कार्य भी किए गए। भारत के शिक्षा और स्वास्थ के क्षेत्र में इन ईसाई मिशनरियों ने बड़ा योगदान दिया। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों ने जागरूक भारतीय जनमत के समर्थन से सती प्रथा, बालिका हत्या, मानव बलि और दास प्रथा जैसे कुरीतियों को कानून के माध्यम से समाप्त किया। पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा और वैज्ञानिक तकनीक ने पारंपरिक भारतीय जीवन को एक झटका सा दिया जिससे उसकी शक्ति, विचारों और क्रियात्मकता में नवचेतना आई। दीर्घकाल से निश्चेष्ट पड़ी बौद्धिक शक्तियाँ जागी और एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ। भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य के समय में यद्यपि दोनों संस्कृतियों की कश्मकश से अशान्ति उत्पन्न हुई, परन्तु इससे बौद्धिक जीवन को बल और स्थायित्व भी मिला।

औपनिवेशिक शासन का दंश

यह सच है कि भारत में ब्रिटिश शासन नें कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी किये थे, परन्तु ये सारे परिवर्तन मूलत: औपनिवेशिक व्यवस्था के अंतर्गत ही हुए थे। परिणामस्वरूप सकारात्मक होते हुए भी अंग्रेजों ने विकास की बजाय पिछड़ेपन को ही आगे बढ़ाया। अंग्रेजों द्वारा बनाई गई नीतियाँ और परिवर्तन कृषि, उद्योग, यातायात और वित्त सहित अधिकांश आर्थिक क्षेत्रों के अतिरिक्त शिक्षा, कानून और नागरिक अधिकारों के सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में भी कमोबेश देखने को मिलते हैं। मौलिक रूप से इन सभी नीतियों और परिवर्तनों ने औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को तो मजबूत किया परन्तु भारतीयों के लिए गरीबी, पिछड़ी अर्थव्यवस्था और पतनोन्मुख समाज का ही सृजन किया।

औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने भारतीय अर्थव्यवस्था में अपने हस्तक्षेप का प्रारम्भ कृषि के क्षेत्र से किया। भूमि संबंधी नीतियों यथा जमींदारी, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी व्यवस्थाओं नें भारतीय कृषि व्यवस्था के विकास को अवरुद्ध कर दिया। अधिक से अधिक राजस्व की वसूली के कारण कृषक की स्थिति कृषक दासों में तबदील हो गई और ऋणग्रस्तता की बोझ से दब गए। देश के अधिकांश हिस्सों में कृषि कुंठित होती चली गई। 1940 के दशक तक आते-आते देश की 70 प्रतिशत भूमि पर जमींदारों का कब्जा हो चुका था। अंग्रेजों की वास्तविक दिलचस्पी अधिक से अधिक लगान वसूल करने की थी, परन्तु उन्होंने कृषि के विकास के लिए अधिक पैसे खर्च नहीं किए। औपनिवेशिक काल में भूमिहीन किसानों की संख्या लगातार बढ़ती रही। 1871 में भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की संख्या पूरे कृषक आबादी का 13 प्रतिशत थी, तो वहीं यह आँकड़ा 1951 में बढ़कर 28 प्रतिशत हो गया था।

अंग्रेजों ने कृषि का व्यवसायीकरण कर वैश्विक बाजार में भारत को जोड़ा। सड़को और रेल के विकास के कारण ग्रामीण उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा शहरी और विश्व बाजार में पहुँचने लगा। लेकिन फिर भी कृषि के व्यवसायीकरण के फलस्वरूप पूँजीवादी कृषि और तकनीकी उन्नति नहीं हो पाई। जितना भी सिंचाई के लिए जल और बेहतर भूमि उपलब्ध थी, वह सब अनाज उपजाने के बजाय व्यापारिक फसलों को उगाने में लगा दिया गया। यूरोप के कई देशों में कृषि के लिए जहाँ उन्नत और आधुनिक तकनीकियों का प्रयोग हो रहा था, तो वहीं भारत में सदियों से इस्तेमाल होने वाले औजार और सिंचाई के साधन किसानों द्वारा उपयोग में लाए जाते रहे थे।

19वीं सदी के दौरान भारतीय कृषि के साथ ही हस्तकला और शिल्पकला उद्योग का भी बहुत तेजी से पतन हुआ और इसका ब्रिटेन से सस्ते औद्योगिक वस्तुओं का आयात था। अंग्रेजों की मुक्त व्यापार नीति से भारतीय घरेलू उद्योग नष्ट हो गए। बरबाद हुए दस्तकारों को और कोई दूसरा रोजगार नहीं मिल पाया, और अंततः वे दस्तकारी छोड़कर रैयत, बटाईदार और भूमिहीन मजदूर बनने को मजबूर हो गए।

भारत की जलवायु और मौसम अंग्रेजों के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल नहीं थी। अतः उन्होंने अपने स्वास्थ्य जीवन पर विशेष ध्यान दिया परन्तु भारतीयों की उपेक्षा की। कलकता जैसे बड़े शहरों में उनके द्वारा बसाए गए "व्हाइट टाउन एंड ब्लैक टाउन" इसकी पुष्टि करते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं का बहुत बुरा हाल था। अधिकांश भारतीय शहरों में सफाई एवं मल निकासी की कोई व्यवस्था नहीं थी और जिन शहरों में ऐसा इंतजाम था भी, वहाँ अधिकतर भारतीयों को इसका कोई फायदा नहीं मिलता था क्योंकि ये सभी सुविधाएं उन्ही इलाकों में सीमित थीं जहाँ यूरोपीय और धनी भारतीय लोग रहते थे। गांवों में आधुनिक जल आपूर्ति व्यवस्था की पहुँच नहीं थी और ज्यादातर शहरों में भी इसका अभाव था। औपनिवेशिक राज्य ने भारतीय आम जनता के लिए कल्याणकारी कार्यों को नजरअंदाज कर अपने फायदों की ओर अधिक ध्यान दिया।

औपनिवेशिक न्याय व्यवस्था कानून के समक्ष प्रत्येक की समानता की अवधारणा पर आधारित थी जिसमें जाति, धर्म, लिंग या सामाजिक हैसियत के आधार पर भेदभाव नहीं था। हालांकि यहाँ भी कई कमियाँ थीं। न्याय के संदर्भ में भारतीयों और यूरोपियनों में स्पष्ट भेद किया जाता था। यूरोपियनों को अपराध के लिए दंड में छूट मिलती थी और उनके न्यायाधीश सिर्फ अंग्रेज ही हो सकते थे। पक्षपातपूर्ण निर्णय के अतिरिक्त न्यायालय के कार्य काफी जटिल और महंगे थे जिससे गरीब जनता के लिए न्याय प्राप्त करना दूर की कौड़ी साबित होती थी।

अंग्रेजों द्वारा लागू की गई शिक्षा पद्धति भी उनकी साम्राज्यवादी नीतियों का ही परिणाम था। शिक्षा के माध्यम से अंग्रेज भारतीयों का पश्चिमीकरण करना चाहते थे, वे काले रंग के अंग्रेज बनाना चाहते थे जो शरीर से तो भारतीय हों पर सोच विचारों से यूरोपीय हो। ऐसा करके अंग्रेज भारतीयों को ब्रिटिश उत्पादों का अच्छा ग्राहक भी बनाना चाहते थे। 1835 में अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का आधार बना कर भारतीय भाषाओं को उपेक्षित कर दिया गया। परन्तु भारतीयों को अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति का लाभ भी मिला। अंग्रेजी पर आधारित उच्च शिक्षा ने भारतीयों का एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग तैयार किया जिसने समरूप चिंतन के कारण औपनिवेशिक शासन की आलोचना की साथ ही राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व भी किया। पर फिर भी ऐसे भारतीयों की संख्या बहुत कम थी। भारतीय जनता का अधिकांश हिस्सा अब भी शिक्षा से वंचित था। 1951 में करीब 84 प्रतिशत लोग निरक्षर थे जिनमे महिलाओं की लगभग 92 प्रतिशत आबादी निरक्षर थी।

1858 से औपनिवेशिक शासन के ढांचे में कई परिवर्तन हुए। राजनीतिक दृष्टिकोण से ब्रिटिश राजनेताओं और प्रशासकों ने भारत में प्रतिनिधिमूलक राजसत्ता स्थापित करने के विचारों का हमेशा विरोध किया। अंग्रेजों का मानना था कि भारत के लिए जनवाद बिल्कुल उचित नहीं है इसलिए भारत पर हमेशा निरंकुश तरीके से शासन किया जाना चाहिए। उनके अनुसार भारत के विशिष्ट सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के कारण यहाँ सिर्फ विनम्र निरंकुशता की प्रणाली ही उचित बैठती है। पर आनेवाले समय में भारतीय बुद्धिजीवी और राष्ट्रवादी नेताओं के लगातार दबाओं नें अंग्रेजों को चुनाव और विधानमंडलों की मांग केन्द्र एवं प्रदेश दोनों स्तरों पर मानने के लिए बाध्य कर दिया। वास्तव में अंग्रेजी सरकार यह सोचती थी कि भारतीयों की राजनीतिक भूख शांत कर वे राष्ट्रीय आंदोलन के कुछ नेताओं को अपने पक्ष में कर लेंगे जिससे राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर हो जाएगा। अंग्रेजी हुकूमत संवैधानिक ढांचे के माध्यम से राजनीतिक प्रभुत्व बनाए रखना चाहता था, जिसके लिए उन्होंने भारतीयों में 'फूट डालो और राज करो' नीति का अनुसरण किया।

इस प्रकार औपनिवेशिक शासन काल में भारत की खुद की पहचान बदल गई थी। अब भारत की पहचान एक पिछड़े और ब्रिटिश शासन पर निर्भर देश के रूप में होने लगी थी।

स्वतंत्र भारत का नवनिर्माण

200 वर्षों की ब्रिटिश अधिकृत भारत के रूप में पहचान के बाद स्वतंत्र भारत ने जब अपने नवनिर्माण की यात्रा आरम्भ की तो उसके पास सिर्फ समस्याएं ही थीं। देश के नेताओं के समक्ष आजाद भारत के उन सपनों और जनता की आकांक्षाओं को पूरा करना था, जिसकी कीमत भारतीय जनता ने राष्ट्रवादी आंदोलनों और आजादी की लड़ाई में चुकाई थी। राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा दिए गए आधारभूत मूल्यों के प्रति विभिन्न भारतीय नेताओं की एक मौलिक सहमति थी जिसके आधार पर स्वतंत्र भारत का निर्माण किया जाना था।

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति और विभाजन के बाद भारत एवं देशी रियासतों को एक प्रशासन के अंतर्गत लाना राजनीतिक नेतृत्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती थी। सरदार वल्लभभाई पटेल की दृढ़ता से देशी रियासतों का भारत में विलय हुआ। निःसंदेह रियासतों के विलयन ने क्षेत्र और आबादी के रूप में पाकिस्तान बन जाने के कारण जो क्षति हुई थी उसे पूरा कर दिया। निश्चय ही इससे अखंड भारत का निर्माण पूरा हुआ। समान अस्तित्व और समान चेतना के कुछ तत्व भारतीयों ने औपनिवेशिक शासन से पहले ही हासिल कर लिए थे और 19वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते इसका और भी विकास हुआ था। आजादी के बाद लगभग तीन दशकों तक कांग्रेस की सरकार ने एक राष्ट्र बनने और उसके एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यही नहीं विपक्षी दलों और अन्य राजनीतिक दलों ने भी सामाजिक संघर्षों को सुलझाने, आर्थिक प्रगति, विधियों एवं मूल्यों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित की। लेकिन, फिर भी आजादी के बाद भी उपनिवेशवाद की छाया सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक

संरचनाओं में गहराई से बनी रही। उत्तर-औपनिवेशिक काल में भारत की पहचान का पुनर्निर्माण कई स्तरों पर हुआ, जिसमें राष्ट्रवाद, भाषा, संस्कृति, परम्पराएँ और आधुनिकता के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास शामिल रहा था।

1. राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय पहचान
स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद भारतीयों को एकजुट करने वाला तत्व था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद इसकी परिभाषा को फिर से गढ़ना आवश्यक था। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरु और बी. आर. अंबेडकर जैसे नेताओं ने आधुनिक भारत की पहचान को धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, और समाजवाद के के आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया। संविधान के माध्यम से एक समावेशी और बहुलतावादी राष्ट्र की नींव रखी गई थी, जो भारत की विविधता को स्वीकार करता है।

2. भाषा और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण
ब्रिटिश शासन ने अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी संस्कृति को प्राथमिकता दी थी, जिसके फलस्वरूप भारतीय भाषाएँ और परम्पराएँ हाशिए पर चली गई थीं। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयास हुआ, लेकिन दक्षिण भारतीय राज्यों और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की पहचान को बनाए रखने के संघर्ष के कारण भारत को बहुभाषी राष्ट्र के रूप में स्वीकार करना पड़ा। आज भी, अंग्रेजी भाषा का प्रभाव शिक्षा, प्रशासन और तकनीकी क्षेत्रों में मजबूत बना हुआ है।

3. जाति, धर्म और सामाजिक संरचना
औपनिवेशिक शासन ने "फूट डालो और राज करो" की नीति के तहत सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया, जिससे धार्मिक और जातिगत पहचानें और अधिक मजबूत हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने समानता और सामाजिक न्याय की दिशा में प्रयास किए और विशेष रूप से दलितों, आदिवासियों, और अन्य पिछड़े वर्गों को अधिकार देने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए। मंडल आयोग और आरक्षण प्रणाली जैसे कदम इसी सामाजिक पुनर्निर्माण का हिस्सा थे।

4. आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन
भारत में आधुनिकता की यात्रा उपनिवेशोत्तर पहचान निर्माण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। एक ओर जहाँ वैश्वीकरण और औद्योगीकरण ने पश्चिमी मूल्यों, उपभोक्तावाद, और नई जीवनशैलीयों को बढ़ावा दिया तो वहीं दूसरी ओर, भारतीय परम्पराएँ, योग, आयुर्वेद और सांस्कृतिक विरासत को पुनः प्रतिस्थापित करने के प्रयास भी हुए। इस प्रकार उत्तर-औपनिवेशिक काल में आधुनिकता और परंपरा के बीच एक प्रतिरोध भी देखने को मिलता है। इस प्रतिरोध ने भारतीय पहचान को एक विशिष्ट रूप दिया, जिसमें आधुनिकता और परंपरा का मिश्रण देखने को मिलता है।

5. आर्थिक पहचान
भारतीय अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय बाजार, यातायात और संचार तंत्र 1947 के बाद और भी एकीकृत हो गए। राष्ट्रीय पैमाने पर औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया गया तथा बांध, स्टील, खाद, सीमेंट, भारी मशीन के कारखाने तथा बिजलीघर ने शीघ्र ही इसके विकास को गति प्रदान की। 1991 में आर्थिक उदारीकरण के बाद भारत ने वैश्विक स्तर पर अपनी आर्थिक पहचान को पुनर्परिभाषित किया। इससे भारत की नई पहचान एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति के रूप में बनी। भारतीय अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय बाजार, यातायात और संचार तंत्र 1947 के बाद और भी एकीकृत हो गए जिन्हें भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में देखा जा सकता है। हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, नीली क्रांति आदि जैसी योजनाओं ने भारत को आर्थिक रूप से और भी मजबूत बनाया। इन्ही सब प्रयासों से वैश्विक आर्थिक मंच पर भारत विश्व की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है और विकासशील से विकसित देश बनने की दिशा में अग्रसर है।

6. राजनीतिक पहचान
आजादी के बाद राजनीतिक रूप से, लोकतंत्र और चुनावी प्रक्रिया ने जनता की भागीदारी को सुनिश्चित किया। स्वतंत्र भारत ने 1961 में गुट-निरपेक्ष आंदोलन (NAM) के जरिये वैश्विक राजनैतिक मंच पर अपनी एक अलग पहचान बनाई। यह न तो पूंजीवादी पश्चिम के साथ था, न ही साम्यवादी सोवियत संघ के साथ। गुटनिरपेक्षता भारत तथा अन्य नव-स्वतंत्र राष्ट्रों की उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद से हासिल की गई आजादी बरकरार रखने के संघर्ष का प्रतीक है। इससे भारत की विदेश नीति को भी मजबूती मिली। वैश्विक रूप से भारत का विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश कहलाया जाना इसकी सबसे बड़ी पहचान है।

7. विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रगति
भारत में तकनीक के विकास को संचार, ऊर्जा और अंतरिक्ष कार्यक्रम जैसे क्षेत्रों में देखा जा सकता है। 1948 में होमी भाभा के नेतृत्व में भारत का परमाणु कार्यक्रम शुरू हुआ। भारत परमाणु ऊर्जा का उपयोग बिजली उत्पादन, चिकित्सा, कृषि और अनुसंधान में कर रहा है। भारत में कई परमाणु ऊर्जा संयंत्र कार्यरत हैं। आज भारत परमाणु ऊर्जा संपन्न देशों की श्रेणी में भी शामिल है। भारत का अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम 1962 से प्रारंभ हुआ। 1969 में ISRO (Indian space research organisation) की स्थापना हुई। स्थापना के पश्चात भारत के लिए ISRO ने कई कार्यक्रमों एवं अनुसंधानों को सफल बनाया है। इससे न सिर्फ भारत के कल्याण के लिए बल्कि भारत को विश्व के समक्ष 'सॉफ्ट पॉवर' के रूप में स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में संचार क्रांति की शुरुआत 1980 और 1990 के दशक में हुई, जब सरकार ने दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में सुधार किए। 21वीं सदी के प्रारंभ में संचार क्रांति हुई

जिसने भारत को डिजिटल और कनेक्टेड राष्ट्र बना दिया है। भारत के ये कार्यक्रम इसे इसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वैश्विक शक्ति बना रहे हैं।

मूल्यांकन

उत्तर-औपनिवेशिक काल में भारत की पहचान का निर्माण कार्य एक चुनौती भरा कार्य था। इस पहचान को किसी एक विशिष्ट रूप में चित्रित नहीं किया जा सकता है, बल्कि विविध क्षेत्रों में भारत सरकार द्वारा किए गए कार्यों एवं सुधारों द्वारा समझा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी औपनिवेशिक काल में प्रचलित कानूनों एवं नीतियों को आवश्यकतानुसार कुछ बदलाव कर उन्हें लागू किया गया। 15 अगस्त 1947 में भारत को स्वतंत्र रूप से तो एक पहचान मिल गई थी, परन्तु पहले से चली आ रही कुछ पहचान उसके बाद भी बनी रही। एक सबसे बड़ी पहचान भारत की कृषि प्रधान देश के रूप में रही थी, जो आज भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के लिए अपनी अलग पहचान बनाने से अधिक जरूरी उसके समक्ष समस्याओं का हल किया जाना था। गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा, स्वास्थ्य, सीमा सुरक्षा आदि जैसे बड़े मुद्दे बने हुए थे। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे कई समस्याएं अंग्रेजी शासन की देन थे। विगत 77 वर्षों में देश की प्रगति के लिए सरकार ने जितने भी कदम उठाए हैं उनमें औपनिवेशिक काल की दासता के मर्म कमोबेश दिखाई देतें हैं। पर यह भी कहा जा सकता है, कि अंग्रेजों द्वारा किए गए कई सुधार कार्य भारत के लिए लाभप्रद भी रहीं, जैसे- आधुनिक शिक्षा, रेलवे, सामाजिक सुधार आदि। विविधताओं से भरे इस देश में इसकी पहचान किसी एक कसौटी पर रख कर नहीं की जा सकती है। राजनैतिक तौर पर सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश, धार्मिक दृष्टिकोण से धर्मनिरपेक्ष देश, आर्थिक रूप से विकासशील देश आदि जैसी पहचान भारत देश से ही संदर्भित है। पर कुछ क्षत्रों को छोड़ कर इसके पहचान का निर्माण आज भी जारी है, जैसे विकासशील से विकसित देश के रूप में पहचान का निर्माण। उत्तर-औपनिवेशिक काल में भी देश के समकक्ष कई समस्याएं बरकरार है, जिनका समाधान किया जाना स्वयं के पहचान के निर्माण से ज्यादा जरूरी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- गुहा, रामचंद्र, (2011), *भारत गांधी के बाद,* गुड़गांव, पेंगुइन बुक्स इंडिया
- चंद्र, बिपिन, (2008), *आधुनिक भारत का इतिहास,* नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड
- चंद्र, बिपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, (2009), *आजादी के बाद का भारत,* दिल्ली, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय
- चंद्र, बिपिन, (2019), *आधुनिक भारत,* नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड
- चोपड़ा, पी, एन, बी, एन पुरी, एम, एन, दास, (2009), *भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास,* , नई दिल्ली, मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लिमिटेड
- दत्त, रजनी, पाम, (1977), *आज का भारत,* नई दिल्ली, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड
- देसाई, ए, आर, (1977), *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,* नई दिल्ली, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड
- पांडेय, श्रीधर, (2010), *आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
- शर्मा, पी, (2010), *आधुनिक भारत,* आगरा,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल
- सिंह, अभय, प्रसाद, (2014), *भारत में उपनिवेशवाद,* नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड
- सिंहल, दामोदर, (_), *आधुनिक भारत का सांस्कृतिक इतिहास,* मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन
- श्रीनिवास, एम, एन, (2000), *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.